© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

प्राचीन काल में ज्येष्ठ पुत्र का महत्व

सुभाष कुमार (शोद्यार्थी)
स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

शोध आलेख सार – ज्येष्ठ भ्राता ज्येष्ठ वृति रखता था तब तक परिवार समृद्ध रहता था और प्रगति के पथ पर अग्रसर होता था। राजा अपने भाईयों को उच्च पदों पर नियुक्त करते थे। वर्तमान समय में भी कहीं–कहीं पर अभी भी ज्येष्ठ पुत्र को विशेषांक देने का प्रावधान है। मनु के अनुसार यदि ज्येष्ठ भाई लोभ के कारण छोटे भाईयों को उनका दायांश नहीं देता है तो उसे उसका विशिष्ठ भाग "उद्धार" नहीं मिलता है और राजा द्वारा दण्डनीय होता है।

मुख्य शब्द – प्राचीन, काल, ज्येष्ठ, पुत्र, राजा, श्राद्ध, धार्मिक।

प्राचीन काल में ज्येष्ठ पुत्र का महत्व और मान सभी पुत्रों में अधिक था। उसी को श्राद्ध और धार्मिक अनुष्ठान करने का अधिकार प्राप्त था। प्रथम पुत्र के उत्पन्न होते ही पिता पितृ ऋण से उऋण हो जाता था।

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्रो भवति मानवः।
पितृणामनृण्श्चेव स तस्मात्सर्वमर्हति।।[1]

जब तक ज्येष्ठ भ्राता ज्येष्ठ वृति रखता था तब तक परिवार समृद्ध रहता था और प्रगति के पथ पर अग्रसर होता था। ऐसा कर्त्तव्यनिष्ठ और उत्तरदायी भ्राता अपने अनुज भ्राताओं द्वारा माताओं के तुल्य पूजित था।[2] पिता की मृत्यु के बाद सभी भ्राता ज्येष्ठ भ्राता के अन्तर्गत रहने तथा जो श्रद्धा पिता के प्रति व्यक्त करते थे वही ज्येष्ठ भ्राता के प्रति व्यक्त करने के लिए निर्देशित किए गये थे।[3] अगर ज्येष्ठ भ्राता अपने अन्य भाईयों से अलग होकर पिता की संपत्ति का विभाजन करना चाहता था तो वह सर्वाधिक और सबसे अच्छा भाग प्राप्त करता था।[4] बड़ा भाई अपने छोटे भाईयों की त्रुटियों, दोषों को नजरअंदाज कर देता था और उनके बीच अपनी गरिमा बनाने में सफल अपराधी होते थे तो बड़ा भाई अपने व्यवहार से अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें सही मार्गदर्शन कराता था।[5] अगर बड़ा भाई अपने कर्त्तव्यों का ठीक निर्वाह न करते हुए अपने छोटे भाई को पीड़ित करता था। तो बड़े भाई को अपने भाग से हाथ धोना पड़ता था।[6]

प्राचीन काल से ही हिन्दु परिवार में ज्येष्ठ पुत्र का अत्यधिक महत्व रहा है क्योंकि उससे कुल और वंश का वर्द्धन और उत्कर्ष होता है। कुटुम्ब का उद्भव विवाह से होता है और विकास संतान से। संतान से कुटुम्ब की अभिवृद्धि होती है और उसकी पूर्णता का लक्ष्य भी पूरा होता है। निःसंतान व्यक्ति संतान के अभाव में अपूर्ण माना गया है।[7] तथा उसका जीवन परिवार–हीन। अतः संतति से परिवार की संवृद्धि होती है और गृहस्थ जीवन उन्नत। वैदिक युग का पुरूष भी संतान की कामना से ही विवाह करता था।[8]

संतान के अंतर्गत पुत्र की कामना करने वाले व्यक्तियों की कमी नहीं थी। वेदों में भी पुत्र प्राप्त करने की अभिलाषा व्यक्त की तथा पिता को दस पुत्र उत्पन्न करने का आशीर्वाद दिया गया हैं।[9] पुत्र की अभिलाषा करने के कारणों में सबसे प्रधान कारण यह था उससे परिवार का पोषण, रक्षा और निरंतरता होती थी। पुत्र से ही परिवार की धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। वही पिता के बाद उसकी संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है।[10]

पुत्र ही अपने पिता की जीर्णावस्था में देखभाल करता है और उसकी मृत्यु के बाद परिवार का संचालन करता है। अतः पिता के लिए पुत्र–प्राप्ति की तीव्रतम अभिलाषा का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। इसलिए पुत्र को शोकापनुद कहा जाता था, क्योंकि पुत्र उत्पन्न होने पर ही पिता का शोक दूर होता था और उसे पितृ ऋण से मुक्ति मिलती थी। पितृ ऋण से मुक्ति पाना समाज के सभी द्विजों का उद्देश्य था।

प्राचीनकालीन व्यवस्थाकारों ने बारह प्रकार के पुत्रों का उल्लेख किया है 'औरस पुत्र', 'क्षेत्रज पुत्र', 'दत्तक पुत्र', 'कृत्रिम पुत्र', 'गूढ़ज पुत्र', 'अपविद्ध पुत्र' 'कानीन पुत्र', 'सहोढ़ पुत्र', 'क्रीतक पुत्र', 'पौनभर्व पुत्र', 'स्वयंदत्त पुत्र', 'पराशव पुत्र'। परंन्तु प्राचीनकाल से ही भारत में 'ज्येष्ठ पुत्र' का महत्व अन्य पुत्रों से अधिक था। उसी को श्राद्ध आदि कर्म करने का अधिकार था। प्रथम पुत्र के उत्पत्ति होते ही पिता पितृ ऋण से उऋण हो जाता था।[11] जबतक ज्येष्ठ भ्राता ज्येष्ठ वृत्ति रखता था तब तक परिवार समृद्ध रहता था। ऐसा कर्त्तव्यनिष्ठ एवं उत्तरदायी भ्राता अपने अनुज भ्राताओं के द्वारा पिता के तुल्य पुजित था।[12]

पिता की मृत्यु के बाद सभी भ्राता ज्येष्ठ भ्राता के अन्तर्गत रहने तथा जो श्रद्धा पिता के प्रति व्यक्त करते थे, वही ज्येष्ठ भ्राता के प्रति व्यक्त करने के लिए निर्देशित लिये गये थे।[13]

प्रायः सभी धर्मशास्त्रकारों की अभिव्यक्ति है कि संपत्ति विभाजन में भाग का निर्णय करने से पूर्व पैतृक संपत्ति के कुल ऋणों का भुगतान, पिता द्वारा लिए गये नैतिक एवं वैधानिक ऋणों का भुगतान, पिता द्वारा दिये गये प्रीतिदान, दोषयुक्त सहभागियों एवं आश्रित नारियों का जीविका निर्वाह, कुमारी कन्याओं के विवाह में व्ययों आदि की व्यवस्था अवश्य कर लेनी चाहिए।[14] नारद का मन्तव्य है कि पैतृक संपत्ति से छोटे भाईयों के संस्कारों के लिए भी धन मिलना चाहिए।[15] इसका समर्थन याज्ञवल्क्य एवं वृहस्पति ने भी किया है।[16]

पैतृक संपत्ति के विभाजन में प्रायः सभी धर्मशास्त्रकारों ने यह व्यवस्था दी है कि ज्येष्ठ पुत्र को अधिक सुविधाएँ दी जानी चाहिए। इस संबंध में मनु की धारणा है कि एक ही जाति के पत्नियों से उत्पन्न पुत्रों में जो सबसे पहले उत्पन्न होता है (यहाँ तक कि छोटी रानी से भी) वही ज्येष्ठ माना जाता है। जुड़वा भाईयों में पहले उत्पन्न होने वाला ज्येष्ठ माना जाता है। किंतु कुछ जातियों के पत्नियों में समान जाति वाली भार्या का पुत्र (भले ही बाद में उत्पन्न हुआ हो) ज्येष्ठ होता है।[17] संपत्ति विभाजन आदि में ज्येष्ठ पुत्र को वरीयता देते हुए नारद का मन्तव्य है कि ज्येष्ठ पुत्र को अधिक संपत्ति दी जानी चाहिए तथा सबसे छोटे पुत्र को थोड़ी कम। शेष अविवाहित बहनों के साथ ही सब लोगों में समान भाग दायांश में देना चाहिए। यह विधि वैधानिक ढ़ंग से लागू होता था। वैधानिक रूप से विवाहित निम्न वर्ण की भार्या से उत्पन्न पुत्रों की भी वर्ण श्रेष्ठता के फलस्वरूप अपेक्षाकृत अधिक संपत्ति प्राप्त करने का प्रावधान था।[18] एक अन्य स्थल पर नारद ज्येष्ठ पुत्र को संपूर्ण संपत्ति देने की भी घोषणा करते हैं, किंतु ऐसी दशा में पुरे कुटुम्ब की देखभाल ज्येष्ठ पुत्र को ही करनी पड़ती थी।[19]

मनु,[20] याज्ञवलक्य[21] वृहस्पति[22] विष्णु[23] कात्यायन[24] ने भी इसका समर्थन किया है। महाभारत के अनुसार यदि बड़ा भाई अपने कर्त्तव्यों का ठीक ढ़ंग से निर्वाह न करते हुए अपने छोटे भाईयों को पीड़ित करता था तो, बड़े भाई को अपने भाग से हाथ धोना पड़ता था।[25] पिता के जीवन–काल में ही अगर पुत्र संपत्ति का विभाजन करना चाहते तो, पिता अपनी संपत्ति का विभाजन सभी पुत्रों में समान भाग प्रदान करते हुए कर देता था।[26]

सभी भाईयों में ज्येष्ठ भ्राता को धन का एक विशेष अंश मिलता है जिसे ज्येष्ठांश कहते हैं।[27] यह भी सूचना मिलती है कि पैतृक संपत्ति में एक ही वर्ण की पत्नियों से उत्पन्न पुत्र को समभाग मिलना चाहिए।[28] यदि अनुज पापकर्मी हो या दुश्चरित हो तो संपूर्ण धन अग्रज को मिलना चाहिए।[29] यदि ज्येष्ठ भ्राता परदेश में जाकर या अन्य किसी उपाय से धन अर्जित करता है तो, वह उसकी निजी संपत्ति है। उसमें से अपने भाईयों का भाग देना उसके इच्छा पर निर्भर है।[30]

यदि धन की वृद्धि सभी भाईयों ने की हो एवं पिता के जीवनकाल में ही यदि वे अलग–अलग हो जाना चाहे तो उसे उन सबों में धन का सम–विभाजन करना चाहिए।[31] सामान्य परिवारों में पुत्रों में पैतृक संपत्ति के विभाजन का यह नियम था, परंतु राजकुलों में यह नियम प्रचलित नहीं था। यदि ऐसा किया जाये तो राजकोष ही रिक्त हो जाएगा जिससे राज्य भी समाप्त हो जाएगा। राजपुत्रों में पिता की संपत्ति तथा उसके राज्य का एकमात्र अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र की माना गया है। पाण्डवों में ज्येष्ठ होने के कारण युधिष्ठिर को राजा बनाया गया किन्तु प्रत्येक परिस्थिति में यह नियम मान्य नहीं था। घृतराष्ट्र यद्यपि भाईयों में ज्येष्ठ थे परंतु अंधा होने के कारण राजा नहीं बनाये गये।[32] प्रश्न यह है कि संपूर्ण राज्य का स्वामी ज्येष्ठ भ्राता ही होता था तो अन्य भाईयों के भरण–पोषण की क्या व्यवस्था थी? राज्य के अन्यान्य उच्च पदों पर योग्य भाईयों को नियुक्त किया जाता था जैसा कि युधिष्ठिर ने किया था।[33]

ऐतिहासिक साक्ष्यों से भी यह बात ज्ञात होती है कि राजा अपने भाईयों को उच्च पदों पर नियुक्त करते थे। वर्तमान समय में भी कहीं–कहीं पर अभी भी ज्येष्ठ पुत्र को विशेषांक देने का प्रावधान है। मनु के अनुसार यदि ज्येष्ठ भाई लोभ के कारण छोटे भाईयों को उनका दायांश नहीं देता है तो उसे उसका विशिष्ठ भाग "उद्धार" नहीं मिलता है और राजा द्वारा दण्डनीय होता है।

संदर्भ सूची

1. मनुस्मृति, 9.106
2. मनुस्मृति, 6.110
3. गौ0 ध0 सू0, 28.1.3
4. याज्ञवल्क्यस्मृति, 2.114
5. महाभारत, 105.4
6. उपर्युक्त, 105.7
7. शतपथ ब्राह्मण, 5.2.1.10
8. अथर्ववेद, 14.1.49

9. ऋग्वेद, 1.85.25
10. तैत्तरीय ब्राह्मण, 3.7.1
11. मनुस्मृति, 9.106
12. मनुस्मृति, 6.110.
13. गौतमधर्मसूत्र, 28.1.3
14. नारदस्मृति, 13.32.
15. नारदस्मृति, 13.33
16. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.114
17. मनुस्मृति, 9.123–25
18. नारदस्मृति, 13.13–14
19. नारदस्मृति, 13.5
20. मनुस्मृति, 9.130
21. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.135
22. वृहस्पति स्मृति, 25.56
23. विष्णु, 17.4
24. कात्यायन स्मृति, 926
25. महाभारत, 105.4.7
26. महाभारत, 105.20
27. महाभारत अनु0, 47.58
28. महाभारत अनु0, 47.57
29. महाभारत अनु0, 108.10
30. महाभारत अनु0, 108.11
31. महाभारत अनु0, 108.11
32. महाभारत आदि, 80.241, 89.19, 90.47
33. महाभारत शांति, 31.41